



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2021; 7(1): 129-134

© 2021 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 21-10-2020

Accepted: 05-12-2020

भारद्वाज बर्गाए

शोधच्छात्र, दयानन्द-वैदिक-

अध्ययन-पीठ, पंजाब

विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, पंजाब,

भारत

यजुर्वेद में राजनैतिक सिद्धान्त

भारद्वाज बर्गाए

भूमिका-

वैदिक समाज में सम्पूर्ण पृथिवी को एक राष्ट्र माना जाता था एवं सम्पूर्ण पृथिवी के शासक को सार्वभौम राजा माना जाता था। वैदिक शासन व्यवस्था के तीन प्रकार दिखाई पड़ते हैं- यथा १. धर्मतान्त्रिक २. लोकतान्त्रिक ३. राजतान्त्रिक, इनका परिचय निम्नलिखित है।

धर्मतान्त्रिक -

धर्मतान्त्रिक शासन व्यवस्था का उल्लेख महाभारत में प्राप्त होता है।

न राज्यं न च राजाऽसीन्न दण्ड्यो न च दाण्डिकः।

धर्मेणैव प्रजाः सर्वाः रक्षन्ति स्म परस्परम् ॥

लोकतान्त्रिक -

इसमें शासन का प्रमुख राजा होता था, परन्तु राज सिंहासन उसे वंशानुगत नहीं प्राप्त होता था अपितु प्रजा द्वारा उसका चयन किया जाता था। यथा ऋग्वेदस्थ मन्त्र में ऋषि का यह कथन - हे ! राजन् हमने आपका राष्ट्राध्यक्ष के रूप में चयन किया है, अतः आप हमारे साथ रहकर स्वयं शक्तिशाली बनो तथा राष्ट्र को भी समृद्ध करो व कभी राष्ट्र से अलग न होओ ॥

राजतान्त्रिक -

इस प्रणाली में वंशानुगत राजसिंहासन प्राप्त करने वाला ही राजा होता था। उसके योग्यता या अयोग्यता के विषय में कोई स्पष्ट विचार नहीं था तथापि योग्य पुत्र को ही राजा नियुक्त किया जाता था।

राज्य की उत्पत्ति -

राज्य मानव समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है। समाज की व्यवस्था और मनुष्य की सुरक्षा का श्रेय राज्य को ही है। विद्वानों ने राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धांत प्रतिपादित किये हैं। जिनमें निम्न मुख्य हैं-

• **दैवी उत्पत्ति का सिद्धान्त -**

इस सिद्धान्त के अनुसार राजा ईश्वर का प्रतिनिधि होता है। उसकी आज्ञा ईश्वर का आदेश है अतः उसको मानना धार्मिक कर्तव्य तथा विरोध करना पाप है। मनु का कहना है-

Corresponding Author:

भारद्वाज बर्गाए

शोधच्छात्र, दयानन्द-वैदिक-

अध्ययन-पीठ, पंजाब

विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़, पंजाब,

भारत

'विधाता ने इन्द्र, मरुत, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र एवं कुबेर के प्रमुख अंशों से युक्त राजा की सृष्टि की, इस कारण वह तेज में सब जीवों को अभिभूत करता है।'³

• शक्तिसिद्धान्त -

यह भी राज्य की उत्पत्ति के सिद्धान्तों में से एक है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य सर्वोच्च शक्ति का परिणाम है। राज्य की उत्पत्ति हीनों पर बलवानों के आधिपत्य जमाने के फलस्वरूप हुई। इस सिद्धान्त के अनुसार शक्ति राज्य की उत्पत्ति का ही कारण नहीं वरन् राज्य का आधार भी है।⁴

• सामाजिक समझौते का सिद्धान्त -

इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य न तो ईश्वरीय रचना है और न ही स्वाभाविक संस्था है। यह एक कृत्रिम संस्था है इसका स्रोत व्यक्ति की इच्छा है। राज्य का जन्म लोगों के पारस्परिक समझौते के फलस्वरूप हुआ। वर्तमान काल में सामाजिक समझौते वाला सिद्धान्त दो स्वरूपों में उपस्थित किया जाता है। पहला वह है जिसके द्वारा शासन एवं जनता में स्पष्ट अभिमत की कल्पना की गई है और दूसरा वह है जिसके द्वारा यह व्यक्त होता है कि एक ऐसे राजनैतिक समाज का निर्माण हुआ जो व्यक्तियों का पारस्परिक समझौता था और जिसमें राजा का कोई हाथ नहीं था।⁵ इस सिद्धान्त के समर्थक हाब्स, लॉक तथा रूसो भी थे।

• पैतृकसिद्धान्त -

इस मत के अनुसार कुटुम्ब का ही विकसित एवं विस्तृत रूप राज्य है। परिवार में पिता का ही सब सदस्यों पर नियन्त्रण व अधिकार होता था। आगे चल कर यह परिवार क्रमशः गोत्र, समुदाय व समाज में बदल गये तथा समाज से राज्य की उत्पत्ति हुई। अरस्तु के अनुसार परिवारों के समूह से ही गाँव उत्पन्न हुए और ग्रामों के समूह से समाज एवं राज्य की उत्पत्ति हुई।⁶ सर हेनरी मेन इस सिद्धान्त का समर्थन करते हुये कहते हैं कि सोलहवीं व सत्रहवीं शताब्दी में रूस में लगभग दो सौ या तीन सौ परिवार ऐसे थे जो एक ही गृहपति द्वारा संचालित व शासित किये जाते थे।⁷

• ऐतिहासिक या विकासवादी सिद्धान्त -

इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य नामक संस्था बहुत प्राचीन है जिसका धीरे-धीरे विकास हुआ। प्रारम्भ में मानव समाज असंगठित था जैसे सभ्यता का विकास हुआ, समाज संगठित होता गया तब समाज की आवश्यकता की पूर्ति के लिये राज्य का जन्म हुआ। डा०गार्नर⁸ गैट्टेर इत्यादि-इस सिद्धान्त के समर्थक हैं। स्वामी दयानन्द जी का सिद्धान्त सब सिद्धान्तों से भिन्न है। वे राजा को परमात्मा का सेवक मानते हुए लिखते हैं- "हम प्रजापति अर्थात् परमेश्वर के प्रजा और परमात्मा हमारा राजा हम उसके किङ्कर भृत्यवत् हैं। वह कृपा करके अपनी सृष्टि में

हमको राज्याधिकारी करे और हमारे हाथ से अपने सत्यन्याय की प्रवृत्ति करावे"।⁹

उन्होंने यजुर्वेदभाष्य में एक स्थल पर कहा है - ईश्वर प्रेमी, बली, परा- क्रमी, पुष्टियुक्त, चतुर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, प्रजापालन में समर्थ विद्वान् की अच्छी प्रकार परीक्षा कर सभा का स्वामी करने के लिये अभिषेक करके बनावे। मनुष्य राजधर्म की उन्नति नित्य करें।¹⁰ अन्यत्र "अपने आत्मा व शरीर को राजा वा अधिकारी न समझे किन्तु राजनीति ही को राजा और राज्याधिकारणी माने" ऐसे इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

• राज्य के तत्त्व

प्रायः सभी राजनीति शास्त्रज्ञों ने राज्य के सात तत्त्व बतलाये हैं। यथा - 1.शासक या सम्राट्, 2. अमात्य, 3. जनपद या राष्ट्र (राज्य की भूमि), 4. दुर्ग सुरक्षित (नगर या राजधानी) 5. कोश, 6. दण्ड, एवं 7. सेना। इन तत्त्वों को प्रकृति भी कहा जाता है।¹¹

इस प्रकार राज्य के सभी अंग महत्त्वपूर्ण हैं कोई दूसरे से हीन नहीं केवल जनसमूह से ही राज्य का निर्माण नहीं होता। जनसमूह को किसी स्वामी के अनुशासन के अनुसार चलना पड़ता है। राज्य के लिये सुव्यवस्थित आर्थिक व्यवस्था (कोश) भी उतनी ही आवश्यक है। राज्य के सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं - स्वामी, शासन व्यवस्था, निश्चित भूमि आर जनसंख्या। ये अति प्राचीन सूत्रकारों को भी विदित थे।¹²

• राज्य का उद्देश्य

राज्य का उद्देश्य धर्म की उन्नति और न्याय की स्थापना करना है। राजा को चाहिये कि आप धर्मात्मा होकर मनुष्यों को धार्मिक करे और न्याय की गद्दी पर बैठ के निरन्तर न्याय किया करे। "क्योंकि वही राजा है जो न्याय को बढ़ाने वाला हो। धर्म की स्थापना के लिये आवश्यक है कि कपट व्यवहार से छलने और अनर्थ करने वालों को रोककर धर्मात्माओं का पालन किया जाये"।¹³

इसके अतिरिक्त राज्य का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य लोक कल्याण में वृद्धि करना तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त करना है। इसके लिये आवश्यक है कि राजा और प्रजा का व्यवहार परस्पर पिता और पुत्र के समान हो। स्वामी जी की दृष्टि में - जो राजा प्रजा, पिता और पुत्र के समान अपना बर्ताव बर्ते तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फल की सिद्धि को यथावत् प्राप्त हो।" अन्यत्र वे लिखते हैं - "इस संसार मे मनुष्य सब जगत् की रक्षा करने वाले ईश्वर तथा सभाध्यक्ष को न भूले किन्तु उनकी अनुमति में सब कोई अपना-अपना बर्ताव रखे। अतः जब राजा प्रजा के किये हुए कार्यों का निरीक्षण कर उसे नियम में रखता है और किसी को दुःख देने वाले छलकपट के कार्य नहीं करता तब उसकी सहायता से मनुष्य मोक्ष और व्यवहार सिद्धि को पाकर धर्मशील होता है।

• शासन विधान

शासन के संचालन के लिये विधान हुआ करता है। भारतीय विधान के ग्रन्थ स्मृति और धर्मसूत्र हैं। मनुस्मृति के आदि में

शासक अर्थात् राजा की आवश्यकता पर बल दिया गया है। शान्तिपर्व में भी कहा गया है कि सर्वप्रथम राजा की प्राप्ति करनी चाहिये तब पत्नी और इसके उपरान्त धन का सञ्चय करना चाहिये क्योंकि राजा के अभाव में न तो पत्नी रह सकेगी और न धन प्राप्त हो सकेगा। अतः स्पष्ट है कि कुटुम्ब, धन की संस्थापनायें एवं दुर्बल-रक्षा राजा के अस्तित्व के साथ निहित हैं। स्वामी दयानन्द ने भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये अच्छे राजा का सहयोग आवश्यक माना है। किन्तु वे राजा की निरंकुशता के पक्षपाती नहीं। उन्होंने यजुर्वेदभाष्य में लिखा है – कभी भी राष्ट्र एक राजा की अधीनता में स्थिर न हों क्योंकि एक पुरुष से बहुतों के हित-अहित का विचार कभी नहीं हो सकता।¹⁴

• सभा का निर्माण

सभा निर्माण के बारे में मनुस्मृति में उद्धृत किया गया है-

दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् ।

त्र्यवरा वापि वृत्स्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥¹⁵

इस प्रकार सभा में अधिक से अधिक दश और कम से कम तीन सभासद होने चाहिये, परन्तु सभासद वही हो सकते हैं जो विद्या युक्त हों। जो ब्रह्मचर्य, सत्यभाषण व्रत, वेद विद्या वा विचार से रहित जन्ममात्र से शूद्रवत् हैं ऐसे उन सहस्रों मनुष्यों के मिलने से भी सभा नहीं कहलाती इसलिये तीनों सभाओं में मूर्खों को कभी पद प्रदान न करें।

• सभापति के गुण

सभापति समस्त विद्या को जानने वाला सूर्य आदि के सदृश गुण कर्म, स्वभाव वाला होना अपेक्षित है। यही नहीं ईश्वर के समान सकल ऐश्वर्य का दाता, इन्द्रियों को जीतने वाला धर्मात्मा, पुत्र के समान प्रजा पालन में चित्त लगाने वाला, आलस्य और पक्षपात को छोड़ उत्तम कर्मों में प्रवृत्त, शरीर और आत्मा के बल से पूर्ण, पुण्य प्रशंसा, सुन्दर रूप, विनयशूर, तेज, मित्रता, सब कामों में उत्साह, आरोग्य, बल-पराक्रम, धीरज, वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा से युक्त दुष्ट दस्युओं को मारने वाला, राक्षसों को नष्ट करने वाला ही राजा होने योग्य हैं।

• सभाओं के कार्य

तीनों सभायें सेनापति के साथ राज्य के सर्वाङ्गिक विकास में सहायक होती हैं। राज्य प्रबन्ध के लिए आर्य्य राजसभा है जिससे सब राजकार्य सिद्ध हो जाते हैं। राज्य सभा का अध्यक्ष राजा होता है। इक्ष्वाकु राजसभा का प्रथम अध्यक्ष था। देश में भिन्न जाति की सभायें थीं। उनमें राजार्य्य ही मुख्य थी। राज्य सभा के सदस्यों का मुख्य कार्य धर्मार्थ व विद्यार्थ सभा के सदस्यों के साथ सभापति का चुनाव करना है। राजसभा के सभासद भी वेदज्ञ विद्वानों की आज्ञा का उल्लंघन न करें। जो सब गुणों में उत्तम हो उसे सभापति करें। राजसभा का मुख्य कार्य नियम बनाना है।

• धर्म सभा

धर्म सभा का कार्य धर्म का प्रचार करना है जिससे धर्म की उन्नति और अधर्म की हानि होती रहे। धर्म सभा उपदेशकों को नियुक्त कर उनका निरीक्षण करती है। स्वामी जी के शब्दों में- "राजा और प्रजाजनों को चाहिए कि जो जितेन्द्रिय धर्मात्मा परोपकार में प्रीति रखने वाले विद्वान् होवे उनको प्रजा में धर्मोपदेश के लिये नियुक्त करें और उपदेशकों को चाहिये कि प्रयत्न के साथ सबको अच्छी शिक्षा से एक धर्म में निरन्तर विरोध को छोड़ सुखी करें।"

16

• विद्यासभा

विद्यासभा का कार्य विद्या का अनेक विध प्रचार करना है। जिससे अविद्या का नाश होता रहे। उचित है कि सब मनुष्यों में उत्तम-उत्तम विद्या और अच्छे-अच्छे गुणों को बढ़ाते रहे जिससे समस्त लोग श्रेष्ठ गुण और कर्म प्रचार करने में उत्तम होवे।"

• राज्य एवं राजा के कर्तव्य

राज्य में सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए राज्य एवं राजा के कुछ कर्तव्य होते हैं जिसका पालन अत्यन्त आवश्यक है। "राजा को चाहिये अपने राज्य में प्रयत्न के साथ सब स्त्रियों को विदुषी करे और उनसे जो उत्पन्न बालक हो उनको विद्यायुक्त शिक्षकों के आधीन करे जिससे किसी का बालक विद्या और अच्छी शिक्षा के बिना न रह सके"। क्योंकि वेद विद्या से युक्त जो पूर्ण विद्वान् ब्राह्मण हैं वही राज्य के प्रबन्धों में सुख प्राप्ति का हेतु होता है। अतः शिक्षा का प्रसार राजा का प्रमुख कर्तव्य है।

राज्य के कार्यों को पूरा करने के लिये धन की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि श्री अर्थात् जो लक्ष्मी है वही राज्य का स्वरूप सामग्री हैं।¹⁷ प्रजा से लेकर राजाओं की सेना और सभा में जो पुरुष हो वे धन के लिये अत्यन्त पुरुषार्थी हों। किन्तु अनीति से प्रजाजनों से धन न ले और नजर भेंट उत्कोच आदि ग्रहण न करें। ऋषि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं - जो राजपुरुष अन्याय से वादी-प्रतिवादी से गुप्त धन लेकर पक्षपात से अन्याय करे उसका सर्वस्वहरण करके यथायोग्य दण्ड देकर ऐसे देश में रखे जहाँ से पुनः लौट कर न आ सके। राज्य का कर्तव्य है कि वह अपने पास सेना और हथियार रखे, जिससे बाह्याक्रमणकारियों से रक्षा हो सके।

राजा अनेक समाजों को बनाकर सब व्यवस्था और शिल्पविद्या की उन्नति करे। इसके अतिरिक्त कृषि आदि व्यवसायों की उन्नति तथा सर्वत्र नहर आदि द्वारा जल की व्यवस्था करना भी राजा का कर्तव्य है।¹⁸ राजा गुप्त दूतों से प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध शत्रुओं का निश्चय कर वश में करे।

• राजा प्रजा सम्बन्ध

राजपुरुष और प्रजा का जन पिता और पुत्र के तुल्य परस्पर प्रीति से व्यवहार करते हुए ही सुख प्राप्त कर सकते हैं। प्रजा के विरोध से कोई राजा उन्नति नहीं कर सकता और राजा के बिना प्रजा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध नहीं कर सकता। अतः राजा और प्रजा को परस्पर सम्प्रति से राज व्यवहार का पालन करना

चाहिये। ऋषि दयानन्द की दृष्टि में - वह राजा नहीं है जो प्रजा को पीडा दे और वह प्रजाजन भी नहीं जो नीति युक्त राजा की सेवा न करें।¹⁹

वस्तुतः जैसे सूर्य के साथ किरणों और किरणों के साथ सूर्य का नित्य सम्बन्ध है वैसे राजा, सेना तथा प्रजाओं का सम्बन्ध है। अतः राज्य की सुव्यवस्था के लिये आवश्यक है कि राजा और प्रजा अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए एक-दूसरे की सम्मति और सहयोग से सर्वहित तथा राज्य हित में वृद्धि करें। सुखी प्रजा ही राजा की सफलता का रहस्य है तथा गुणवान् कर्तव्य परायण न्यायशील राजा ही प्रजा के सुख का मूल आधार है।

• न्याय की आवश्यकता एवं स्वतन्त्रता

न्याय व्यवस्था राज्य की शासन प्रणाली की कुशलता की परिचायक है। उचित न्याय में ही साधारण नागरिक का हित और सुरक्षा निहित है। ब्राइस के शब्दों में-यदि न्याय का दीपक अन्धेरे में बुझ जाये तो वह अन्धेरा कितना गहन होगा इसकी कल्पना नहीं की जा सकती।²⁰

स्वामी जी यजुर्वेद भाष्य में एक स्थल पर लिखते हैं - यदि राजा न्याय से प्रजा की रक्षा न करे और प्रजा से कर लेवे तो जैसे प्रजा नष्ट हो वैसे राजा भी नष्ट होता है।²¹ अतः राज्य की स्थिरता और सुदृढता के लिये न्याय आवश्यक है।

धर्म की स्थापना तथा अधर्म की निवृत्ति भी न्याय द्वारा ही सम्भव है। मनु ने न्याय शासन को धर्म का प्रतीक माना है और कहा है कि जब न्याय होता है तो धर्म के शरीर से उसे बेधने वाला अधर्म नाम का बाण निकल जाता है।²² अतः असत्य के नाश, सत्य की स्थापना, प्रजा रक्षा, अधर्म के नाश, राज्य की स्थिरता तथा सुदृढता और प्रजा में शान्ति और व्यवस्था की स्थापना के लिये न्याय आवश्यक है। वस्तुतः सत्य आर धर्म की रक्षा ही न्याय का उद्देश्य है।

• राजा और न्याय

स्वामी जी ने - राजा न्याय के प्रकाश और अन्याय की निवृत्ति का हेतु है, कहते हुए राजा और न्याय में घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतिपादित किया है। उनके अनुसार न्यायाधीश न्याय का निर्देश करता है आर राजा दण्ड देता है।²³ अतः न्याय की पवित्रता सफलता राजा अर्थात् निष्पक्ष दण्ड व्यवस्था पर निर्भर है। दण्डव्यवस्था के निष्पक्ष न होने पर न्याय व्यवस्था सफल नहीं हो सकती।

• न्यायप्रक्रिया

दयानन्द जी के अनुसार न्यायाधीश जन-न्याय स्थान पर जाये तत्र सब प्रजास्थवादी, प्रतिवादी, साक्षी, राजपुरुष सम्प्रेक्षक आदि मनुष्यों को प्रसन्नवदन कृपादृष्टि से आनन्दित करे। दक्षिण हाथ उठाकर सब को अभयदान दे और परमात्मा का ध्यान करके कार्यारम्भ करे। ऐसा करने से वातावरण स्वाभाविक बना रहता है और तनाव न होने पर न्यायाधीश को प्रसन्न देखकर वादी-प्रतिवादी निशङ्क होकर अपनी बात कहते हैं।²⁴

• दण्ड की आवश्यकता एवं उद्देश्य

राज्य में व्यवस्था रखने के लिये दण्ड आवश्यक है। दण्ड के भय से लोग दुष्कर्म में प्रवृत्त नहीं होते। मनु ने कहा है - जो दण्ड है वही पुरुष व राजा, वही न्याय का प्रचारकर्ता और सबका शासनकर्ता वही चार वर्ण और चाराश्रमों के धर्म का प्रतिभू भी है।²⁵ दण्ड के अभाव में प्रजा में शान्ति असम्भव है। उचित और अनुकूल दण्ड ही न्यायव्यवस्था का आधार है। अतः प्रजा की रक्षा के लिये डाकू चोर आदि दुष्ट जनों को दण्ड देना आवश्यक है। दण्ड का उद्देश्य उदात्त होने से राजा के लिये भी समुचित दण्ड व्यवस्था है। अन्याय करने वाला राजा पद से अपदस्य किया जा सकता है। यजुर्वेदभाष्य में एक स्थल पर स्पष्ट कहा गया है अपराध के अनुकूल प्रजा राजा को दण्ड दे। दण्ड का उद्देश्य दुष्प्रवृत्ति को रोकना है अतः दण्ड देने वाले व्यक्ति का हृदय निश्छल एव पवित्र होना आवश्यक है। राजा दण्ड देता है।²⁶

• दण्ड प्रक्रिया तथा प्रचलित दण्ड

दण्ड कैसा होना चाहिये यह विचारणीय है। कौटिल्य के अनुसार कठोर दण्ड प्रजा को उद्विग्न कर देता है और दण्ड देने वाले राजा से प्रजा घृणा करती है जो राजा मृदु दण्ड देता है वह लोगों द्वारा तिरस्कृत होता है परन्तु अपराधियों की पात्रता के अनुसार दण्ड देने वाला सत्कृत होता है।²⁷ आजकल बलात्कार की समस्या प्रबल है। स्वामी दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट कठोर दण्ड की व्यवस्था भी नहीं है ऐसी स्थिति में इस समस्या को कैसे सुलझाया जा सकता है यह विचारणीय ही है।

महर्षि दयानन्द के अनुसार- मनुष्य जिस-जिस अंग से विरुद्ध चेष्टा करता है, मनुष्यों को शिक्षा देने तथा उस अपराध को रोकने के लिये मनुष्य के उस-उस अंग को काट देना चाहिये। दंड के उपस्थेन्द्रिय, उदर, जिह्वा, हाथ, पग, आख, नाक, कान, धन और देह ये दस स्थान हैं जिन पर दंड दिया जाता है।²⁸ दण्ड का उद्देश्य प्रजा में शान्ति स्थापित करना है अतः अन्य उपायों के निष्फल होने पर दण्ड का उपयोग अन्तिम अस्त्र के रूप में किया जाता है। स्वामी जी के मत में साम, दाम, भेद के बाद दण्ड का प्रयोग करना चाहिये। अतः दण्ड का उद्देश्य अधर्म की निवृत्ति, असत्य का नाश करना तथा अपराध प्रवृत्ति को रोकना है।

• सुरक्षा, स्वरूप एवं प्रकार

प्रजा की रक्षा राजा का परम कर्तव्य है। राज्य की रक्षा के बिना कोई भी व्यक्ति अपने कार्यों को निर्विघ्न रूप से नहीं कर सकता। दुष्टों से श्रेष्ठों की रक्षा के लिये ही राजा होता है। प्रजा में व्यवस्था के लिए दो प्रकार की सुरक्षा आवश्यक है - आन्तरिक सुरक्षा और बाह्य सुरक्षा।

आन्तरिक सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि - राजा सुपरीक्षित दूत द्वारा राज्य और राजपुरुषों की सुचेष्टा और कुचेष्टा से अपने को अनभिज्ञ रखे। जिस-जिस यत्न से उनकी कुचेष्टा घटे और सुचेष्टा बढे, वैसा यत्न सदा किया करे। दूतों द्वारा सबके आशय को जानने वाला ही राजा होने योग्य है।²⁹ आन्तरिक सुरक्षा के तीन भेद हैं -

चोर डाकू से रक्षा, दुष्ट पुरुषों से सुरक्षा, और पशु-पक्षियों से रक्षाराजा के लिए आवश्यक है कि सन्धि, विग्रह, यान, द्वैध, सश्रय आदि कर्म अच्छी प्रकार विचार कर करे। नीतिज्ञ राजा सदा यह प्रयत्न करे कि उसके मित्र, शत्रु और उदासीन बहुत अधिक न हों।³⁰ इसके अतिरिक्त गुप्तदूतों के प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध शत्रुओं का निश्चय करे और उसी के अनुसार उपायों से उन्हें वश में करे। किसी धर्मात्मा का तिरस्कार और अधर्मी का सत्कार कभी न करे। अतः प्रजा को धर्मपूर्वक सत्कार्य में प्रेरित करने के लिए तथा राज्य में शान्ति स्थापन के लिये आवश्यक है कि चोर, डाकू, लुटेरे, दुष्ट पुरुषों, हिंसक पशुओं आर शत्रुराज्यों से सुरक्षा के उपाय किये जाये।

• युद्ध की आवश्यकता

कभी-कभी निम्न परिस्थितियों में युद्ध आवश्यक हो जाता है- युद्ध में दूसरों द्वारा आह्वान किए जाने पर युद्ध करना क्षत्रियों का धर्म है। अतः जब कभी प्रजा का पालन करने वाले राजा को कोई अपने से छोटे तथा उत्तम संग्राम में आह्वान करे तो क्षत्रिय के धर्म का स्मरण करके संग्राम में जाने से कभी निवृत्त न हों अर्थात् बड़ी चतुराई के साथ उनसे युद्ध करे जिससे अपनी ही विजय हो। प्रजा के सुख तथा रक्षा के लिए भी युद्ध अनिवार्य है। स्वामी जी का कथन है- राजा को चाहिये कि युद्ध की सामग्री का संग्रह कर, शत्रुओं को मार कर प्रजाओं को सुख, धर्मात्माओं को निर्भयता और दुष्टों को भय दे।³¹

• युद्ध के आवश्यक उपादान

युद्ध के कुछ आवश्यक उपादान हैं जिनके बिना राजा शत्रुओं को जीतने में सफल नहीं हो सकता क्योंकि जो राजपुरुष शत्रुओं की सेना को निवृत्त करने अपनी सेनाओं को युद्ध कराने में समर्थ हों वही शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकता है। अतः विजय के लिए अच्छे शिक्षित मन्त्री, कुशल सेनापति, पर्याप्त बलशाली सेना अस्त्र-शस्त्र तथा अश्वदि का होना आवश्यक है।³² इसके अतिरिक्त सेना और सेनापति परस्पर प्रीति करने वाले हों तभी विजय प्राप्त हो सकती है। अतः युद्ध के आवश्यक उपादानों में सेना सर्वप्रथम है।

• सेना

सेना युद्ध में सफलता के लिये आवश्यक है कि सेना स्वस्थ और युद्ध के लिए तैयार हो। स्वामी जी के मतानुसार- जिन राजपुरुषों की हृष्ट-पुष्ट युद्ध की प्रतिज्ञा करती हुई सेना होती है वे सर्वत्र विजय को प्राप्त होते हैं। स्वस्थ सेना ही श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों की ताडना में समर्थ हो सकती है। इसके अतिरिक्त सेना का सुशिक्षित होना आवश्यक है। सेनापति उत्तम कर्म करने वाले अच्छे शिक्षित वीर पुरुषों के साथ ही युद्ध करता हुआ प्रशंसित होता हुआ विजय को प्राप्त होता है।³³

• प्रचुर आयुध

युद्ध में आयुध प्रधान हैं। राजा शस्त्र-अस्त्रों से शत्रुओं का निवारण कर निष्कण्टक राज्य कर सकता है। अस्त्र-शस्त्रों के उचित संग्रह से

ही दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों की रक्षा सम्भव है। स्वामी जी के अनुसार - पृथ्वी का राज्य करते हुए मनुष्यों को अस्त्र-शस्त्रों का संचय कर पूर्ण बुद्धि तथा शरीर बल से युक्त पुरुष को सेनापति करके निर्भयता के साथ बरतना चाहिये।³⁴ युद्ध में विजय के लिए आवश्यक है कि सेना के पास विविध प्रकार का अस्त्र-शस्त्र प्रचुर मात्रा में हों।

• युद्ध नीति

योद्धाजन सेनाध्यक्ष की सहायता और रक्षा प्राप्त कर युद्ध में विजय प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये इन अध्यक्षों का राजपुरुषों का कर्तव्य है कि जिस दिशा में शत्रु लोग उपाधि करते हैं वही जाकर उन्हें वश में करे। इसके अतिरिक्त सब दिशाओं में अध्यक्ष तथा शूरवीरों को आगे और डरने वालों को बीच में स्थापित करें। विद्वानों की सेना के अधीन मूर्खों की सेना करनी उचित है। सब अधिकारियों का अधिपति दाहिनी ओर तथा सेना को प्रेरणा और उत्साह देने वाला वाम की ओर रहे। अपने सैनिकों की पहचान के लिए यह आवश्यक है कि सेनाजन और सेनापति अपने रथादि में भिन्न-भिन्न ब्यूह स्थापित करे और ऐसा उपाय करें जिससे अश्वदि तथा वीरों का अधिक विनाश न हो क्योंकि पराक्रम के क्षय से निश्चय विजय नहीं होती।

• उपसंहार

समाज-व्यवस्था का एक अंग राजनीति भी है। समाज की सुरक्षा एवं व्यवस्था राज्य पर निर्भर करती है। राज्य का उद्देश्य लोककल्याण में वृद्धि करना तथा मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूपी वर्गचतुष्टय की प्राप्ति में प्रवृत्त कराना है। राजा के अतिरिक्त राज्य का कार्य राज्यसभा, विद्यासभा तथा धर्मसभा-तीनों सभाओं पर निर्भर है। राजा तीनों सभाओं की सम्पत्ति से राज्य का संचालन करता है। समुचित शासन प्रबन्ध के लिये यह आवश्यक है कि राजा तथा राज्याधिकारी अपने कर्तव्यों का पालन करें।

समाज व्यवस्था तथा राज्य स्थिरता के लिये न्याय और दण्ड आवश्यक है। राजा और न्याय में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। न्यायव्यवस्था की सफलता निष्पक्ष दण्ड व्यवस्था पर ही निर्भर करती है। लोभवश होकर अन्याय करने वाला न्यायधीश भी प्रजा द्वारा पदच्युत किया जा सकता है। न्याय एवं दण्डव्यवस्था की सफलता प्रजा को सत्कार्य में प्रेरित करने के लिये आवश्यक है। प्रजा में व्यवस्था के लिये दो प्रकार की सुरक्षा आवश्यक है आन्तरिक एवं बाह्य।

युद्ध के समय बाल, वृद्ध एवं मूर्च्छित शरणागत आदि पर प्रहार निषिद्ध है। युद्ध की सफलता के लिये शिक्षित बलशाली सेना, पर्याप्त युद्ध सामग्री, योग्य सेनापति एवं कुशल सेनापति आवश्यक है तथा शत्रु द्वारा आह्वान करने पर युद्ध करना राजा का परम धर्म है। यही नहीं सुरक्षा व्यवस्था की सुदृढता के लिये युद्ध के उपरान्त सब सैनिकों को धन तथा सत्कार द्वारा उत्साहित करना होता है जिससे वे द्विगुणित उत्साह से कार्य कर सकें।

सहायकग्रन्थाः

1. महाभारत, शान्तिपर्व – 59.19

2. आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः। विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रधि भ्रशत्॥ ऋग्वेद – 10.173.1
3. इन्द्रानिलयमार्काणामग्रेषु वरुणस्य चाचन्द्रवितैशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः। मनु. 7.4-5
4. द्र.A.Roy.Political Theory,P.62-63.
5. द्र.पाण्डुरंग वामन काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास,द्वितीय भाग,पृ. 591
6. द्र.A.Roy Political Theory, 67-68
7. द्र.शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति,पृ.150
8. द्र.A.Roy Political Theory,पृ. 70
9. यजु०, प्रजापतेप्रजाऽभूम 18.29
(ख) सत्यार्थ०, षष्ठ समु०, पृ० 107
10. मनुष्यैरीश्वर प्रियंबलवीर्यपुष्टियुक्तं प्रगल्भंसत्यवादिनं जितेन्द्रियं धार्मिकं प्रजापालनक्षमं विद्वांसं सुपरीक्ष्य सभाया अधिष्ठातृत्वेनाभिषिच्य राजधर्मउन्नेयः। यजु.भा.16.24
11. स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणिप्रकृतयः।- कोटिल्य, 6.1
12. द्र.पाण्डुरंग वामन काणे, धर्मशास्त्रं का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० 586
13. राजा स्वयं धार्मिको भूत्वोप्रजाजनानपि धार्मिकान्संपाद्यन्यायासनमधिष्ठाय सततंन्यायकुर्यात्। यजु०भा० 12.17
14. मनुष्यैः सभया सभापतिमिश्रैव राज्यव्यवस्था कार्या न खलु कदाचिदेकराजाधीनत्वेन स्थातव्यं यतो नैकेन बहूनां हिताहितसाधनं भवितुं शक्यमतः। वही 16.24
15. मनु० 12.110
16. धर्मसभा-यया धर्मोन्नतिरधर्महानिश्च सततं भवेत्। यजु ०भा० 7.45
17. राज्य श्री राष्ट्रस्य सम्भारो भवति। राष्ट्रस्य मध्यभागोऽपि श्रीरेवास्ति। ऋग्वेदादि०, पृ. 267
18. अनेकाःसभानिर्मायसर्वाव्यवस्थाःशिल्पविद्योन्नतिश्चकार्या।य जु.भा. 30.6
19. नसराजायःप्रजाप्रीडयेत्-नताःप्रजायानीतिज्ञंनसेवेरन्।- वही 17.15
20. Modern democrecies, vol.p.384
21. यजु.भा. 23.26
22. धर्मोविद्वस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते। शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्वांस्तत्र सभासदः।। -मनुः 8.12
23. प्रजा यथाऽपराधं राजानं दण्डयेत् राजा च प्रजापुरुषम्।- वही, 8.23
24. यजु.भा.पृ.3.69
25. स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः। चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रति भूः स्मृतः।। -मनु० 7.17
26. प्रजा यथाऽपराधं राजानं दंडयेत्। - यजु०भा० 8.23
27. तीक्ष्णदंडो हि भूतानामुद्वेजनीयः। मृदुदंडः परिभूयते। यथार्हदंडः पूज्यः। कौटिल्य-अर्थशास्त्रम्, 1.4
28. येन येनाङ्गेन नरा विचेष्टन्ते तस्य तस्याङ्गस्योपरि दण्डनिपातनेन राजधर्मं सततमुन्नय। -यजु०भा० 30.10
29. दूतैः सर्वजनहृदयाशयविच्छ्रुभन्यायेन प्रजा व्याप्नोति स एव राजा भवितुं योग्यः। - वही 12.13
30. सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः। यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः।। -मनु० 7.177
31. राजा युद्धसाधनानि सम्पाद्य शत्रून्तिहत्य प्रजायै सुखं दद्यात् धर्मात्मभ्योऽभयं दुष्टेभ्यो भयं च दद्यात्। -यजु०भा० 7.37
32. ये राजपुरुषाः शत्रुसेना निवर्तयितुं स्वसेनां योधयितुं समर्थाः स्युस्ते सर्वत्र शत्रूञ्जेतु शक्युः। - वही 29.57
33. सेनापति सुकर्मकारिभिः संशिक्षितैर्वीरैः सहैव युद्धयमानः सन् प्रशंसितो विजयते नान्यथा। -वही 9.14
34. राजप्रजाजनद्वयशस्त्राभ्यास कृत्वा शस्त्रादिसामग्रयः सदा समीपे रक्षणीया। - वही, 16.12